International Journal of Humanities and Social Science Invention (IJHSSI)
ISSN (Online): 2319 – 7722, ISSN (Print): 2319 – 7714
www.ijhssi.org ||Volume 13 Issue 12 || December 2024 || PP. 149-152

वर्तमान परिप्रेक्ष्य में डॉ0 सम्पूर्णानन्द जी के शैक्षिक विचारों का अध्ययन

डॉ0 पूजा सिंह
असिस्टेन्ट प्रोफेसर (शिक्षा शास्त्र)
बाबा प्रसिद्ध नारायण महाविद्यालय,बगथरी,मुरारा,जौनपुर (उ0प्र0

शोध सारांष : *शिक्षा वह है, जो मानवीय अन्तःकरण में अच्छे संस्कारों को पल्लिवित कर सके। शिक्षा वस्तुतः वह है जो व्यक्तिगत, पारिवारिक एवं सामाजिक समस्याओं का स्वरूप एवं समाधान सुझाये। परन्तु आधुनिक शिक्षा या विद्या का स्वरूप बहुत कुछ बदल गया है। उसमें नैतिक शिक्षण और चरित्र निर्माण के लिए कोई स्थान नहीं है। वह कोरी, बौद्धिक उन्नति की ओर ही प्रयत्न है। विद्यार्थियों का चरित्र बल, कर्मशक्ति आशा, विश्वास, उत्साह, पौरूष, संयम और सात्विकता जागृत करने की शक्ति उसमें नहीं है। डॉ0 सम्पूर्णानन्द के शैक्षिक विचारों के विवेचन, मूल्यांकन और समालोचना से सम्बन्धित अध्ययन नगण्य है और भारतीय शैक्षिक संदर्भ में उनके शैक्षिक विचारों का न तो मूल्यांकन किया गया है और न ही उसकी शैक्षिक प्रस्थापनाओं की प्रासंगिकता विवेचित की गयी है जो वर्तमान भारतीय शिक्षानीति और शिक्षार्थी प्रबन्धों के लिए एक प्रतिभूति का कार्य करती। आज के समाज को एक कुषल शिक्षाकी आवश्यकता है, तभी सामाजिक जीवन के लक्ष्य को प्राप्त किया जा सकता है। डा. सम्पूर्णानन्द जी का विचार है कि हमारी शिक्षा–पद्धति का विकास भी त्रुटिपूर्ण रहा है। इसमें उन मौलिक सिद्धांतों की उपेक्षा की जाती है जिन पर उच्च–शिक्षा आधारित होनी चाहिए। डा. सम्पूर्णानन्द जी का मानना है कि हम अपनी शिक्षाको केवल पुस्तकों की पढ़ाई तक ही सीमित न रखकर उसे ऐसा रूप दें जो विद्यार्थियों को समाज से जोड़े और उसे इस प्रकार का प्रषिक्षण दें जिससे वह केवल नगर में रहकर सफेदपोश बाबू न बना रहे। समाज को ऐसे लोगों की हमेशा आवश्यकता रहती है। यदि प्रत्येक मनुष्य को उसकी योग्यतानुसार काम और हर काम के लिए कुशल मनुष्य मिल जायं, तो सभी सुखी और सम्पन्न रहेंगे।*

मुख्य शब्द : डॉ0 सम्पूर्णानन्द, शैक्षिक विचार

प्रस्तावना :–

भारतीय सभ्यता और संस्कृति युगों–युगों की उत्पति है। हमारे यही विचारक, चिन्तक और आध्यात्मिक महापुरूष समय–समय पर हुए हैं, जिन्होंने अपनी ज्ञान गंगा की धारा में न केवल भारत वर्ष वरन् सम्पूर्ण मानवता के लिए कामना की है। इस प्रकार हमारा अतीत अत्यन्त गौरवषाली रहा है। वर्तमान के यथार्थ को हमने स्वीकार किया तथा भविष्य के लिए अपने को जागरूक किया है। वर्तमान भौतिकतावादी युग में मनुष्य इतना अधिक बुद्धिवादी हो गया है कि वह किसी बात को सहज स्वीकार करने को तैयार नहीं है। कागजी डिग्रियों और उपाधियों ने व्यक्ति को इतना अधिक औपचारिक बना दिया है कि बेरोजगारों की बाढ़–सी आ गयी है। जिसके परिणामस्वरूप समाज में अनैतिकता, भ्रष्टाचार, हिंसा, अवसाद, घृणा आदि की प्रवृतियॉ उतरोतर बढ़ती ही जा रही हैं।

शिक्षा वही है, जो मानवीय अन्तःकरण में अच्छे संस्कारों को पल्लिवित कर सके, दर्रे में घुसे हुए अनौचित्य को हिम्मत और निर्भयता के साथ निकालकर फेंक सके। शिक्षा वस्तुतः वह है जो व्यक्तिगत, पारिवारिक एवं सामाजिक समस्याओं का स्वरूप एवं समाधान सुझाये। परन्तु आधुनिक शिक्षा या विद्या का स्वरूप बहुत कुछ बदल गया है। उसमें नैतिक शिक्षण और चरित्र निर्माण के लिए कोई स्थान नहीं है। वह कोरी, बौद्धिक उन्नति की ओर ही प्रयत्न है। विद्यार्थियों का चरित्र बल, कर्मशक्ति आशा, विश्वास, उत्साह, पौरूष, संयम और सात्विकता जागृत करने की शक्ति उसमें नहीं है।

अध्ययन की आवश्यकता एवं अध्ययन :–

शिक्षा के क्षेत्र में नवीन विचारधारा का विकास करने तथा उसमें संस्कारों का समावेष करने सम्बन्धी विचार का पोषण डॉ0 सम्पूर्णानन्द द्वारा किया गया। डॉ0 सम्पूर्णानन्द ने शिक्षाके क्षेत्र में एक नवीन पद्धति को जन्म दिया, जिससे सत्य के विभिन्न पक्षों का साक्षात्कार करने में मानव मत का अनेक दृष्टिकोण से अध्ययन किया गया। उन्होंने बालक में अन्तर्निहित योग्यता एवं क्षमता के आधार पर तत्कालीन शैक्षिक परिस्थितियों एवं विभिन्न योग्यताओं और क्षमताओं तथा सांस्कृतिक सहिष्णुता का अध्ययन करके उसे अपने शैक्षिक चिन्तन में समाहित किया। उन्होंने शिक्षा पद्धति के संगठन में

बालक को एक महत्वपूर्ण मानव के रूप में विकसित करने का विचार रखा। एक सुसंचालित विद्यालय–एक सुखी परिवार, एक पवित्र मन्दिर, एक सामाजिक केन्द्र, लघुरूप में राज्य और मनमोहक वृन्दावन है जिसमें सभी बातों का मिश्रण होता है। परन्तु आधुनिक युग में तथाकथित दुकानों के रूप में प्रतिवर्ष जो विद्यालय खुलते जा रहे हैं वहॉ के अध्यापक, प्रधानाध्यापक, प्राचार्य आदि को जब तक यह ज्ञात नहीं होगा कि बालक को कैसे पढ़ाना है, किस प्रकार बालक को राष्ट्र के सजग प्रहरी के रूप में तैयार किया जा सकता है तब तक हमारी शिक्षाप्रणाली में सुधार नहीं आ सकता है।

डॉ0 सम्पूर्णानन्द के शैक्षिक विचारों के विवेचन, मूल्यांकन और समालोचना से सम्बन्धित अध्ययन नगण्य है और भारतीय शैक्षिक संदर्भ में उनके शैक्षिक विचारों का न तो मूल्यांकन किया गया है और न ही उसकी शैक्षिक प्रस्थापनाओं की प्रासंगिकता विवेचित की गयी है जो वर्तमान भारतीय शिक्षानीति और शिक्षार्थी प्रबन्धों के लिए एक प्रतिभूति का कार्य करती। डॉ0 सम्पूर्णानन्द के शैक्षिक विचारों के माध्यम से शिक्षाके सम्प्रत्यय, शिक्षाके उद्देश्य, शिक्षण विधियॉ, अनुशासन, शिक्षक, शिक्षार्थी एवं विद्यालय सम्बन्धी चिन्तन का विवेचन किया गया है। जो वर्तमान शिक्षा व्यवस्था के विकास एवं सुधार हेतु अत्यन्त आवष्यक महत्वपूर्ण एवं उपयोगी होगा।

अध्ययन के उद्देष्य :–

1. डॉ0 सम्पूर्णानन्द के शैक्षिक विचारों का अध्ययन करना।
2. डॉ0 सम्पूर्णानन्द के शैक्षिक विचारों की अनुशीलन का अध्ययन करना।

डॉ0 सम्पूर्णानन्द के शैक्षिक विचारों की अनुशीलता :–

शिक्षा का अर्थ :–

आज मानव को व्यापक शिक्षाकी आवश्यकता पड़ रही है जो उसे हर क्षेत्र में आगे बढ़ाने का कार्य कर सकती है। विषेषकर हमारे भारतवर्ष में जो प्रजातान्त्रिक व्यवस्था के लिए आवष्यक है, समाज का सम्यक संचालन करने के लिए प्रत्येक नागरिक का कर्तव्य हो जाता है कि वह उचित शिक्षाग्रहण करें। जब तक समाज शिक्षित नहीं होगा, तब तक हम किसी क्षेत्र में आगे नहीं बढ़ सकते चाहे वह राजनीति का क्षेत्र हो या आर्थिक एवं धार्मिक। आज के समाज को एक कुशल शिक्षा की आवश्यकता है, तभी सामाजिक जीवन के लक्ष्य को प्राप्त किया जा सकता है।

शिक्षण विधि :–

डा. सम्पूर्णानन्द जी का विचार है कि हमारी शिक्षा–पद्धति का विकास भी त्रुटिपूर्ण रहा है। इसमें उन मौलिक सिद्धांतों की उपेक्षा की जाती है जिन पर उच्च–शिक्षा आधारित होनी चाहिए। हमारे विष्वविद्यालयों में कला एवं विज्ञान संकाय हैं, परन्तु उनमें पढ़ाये जानेवाले विषयों में कोई सम्बन्ध नहीं हैं। कला विभाग में इतिहास, अर्थशास्त्र एवं राजनीतिशास्त्र पढ़ाये जाते हैं, परन्तु छात्रों को यह नहीं बताया जाता है कि ये सभी समाजशास्त्र के अंग हैं जो कला एवं धर्म ज्ञान से भी सम्बन्ध रखते हैं। किसी एक विषय का ज्ञान मानव विकास का अधूरा चित्र प्रस्तुत करता है।

शिक्षा के उद्देश्य :–

डा. सम्पूर्णानन्द जी मानते थे कि शिक्षा का उद्दश्य शिष्य के जीवन को सफल बनाना षिष्य को समाज का कुषल नागरिक बनाना है। छात्र को अपनी प्रतिभा के अनुसार ऊंची से ऊंची शिक्षाप्राप्त करने का अवसर मिले और उसकी योग्यतानुसार काम मिले तथा वह उन प्रश्नों को समझ सके जो समाज के सामने उठते हैं और उनके सम्बन्ध में यथोचित व्यवहार कर सके जिससे समाज का अधिक से अधिक लाभ हो। जो व्यक्ति ईश्वर को नहीं कर सकता जो ईमानदार ईसाई कहेगा। जिस मनुष्य को प्राचीन बातों पर श्रद्धा हो, उसके सामने जीवन का जो लक्ष्य है उसके अनुसार यदि शिक्षा देने की व्यवस्था की जायेगी तो उसका उद्देश्य नितान्त भिन्न होगा। परन्तु आजकल की शिक्षा निरूद्देश्य है अर्थात् अन्तिम लक्ष्यों से उसका कोई सम्बन्ध नहीं है।

विद्यालय :–

शिक्षा के आदर्ष केन्द्रों के सम्बन्ध में डा. सम्पूर्णानन्द जी का कथन है कि'' हमारे शिक्षा केन्द्रों को आधुनिक जीवन की सीमाओं के अन्दर पुराने कुलपति के वास्तविक आश्रमों जैसा बनने की चेष्टा करनी होगी। उन्हें श्रम को स्वयं पहले आत्मसात् करके वितरित करना होगा और अध्यवसायपूर्ण अनुसन्धानों से इस ज्ञान भण्डार की वृद्धि करनी होगी।

उन्हें यह भी देखना होगा कि जीवन को अधिक निष्कलुष, सुखी और परिपूर्ण बनाने में इस ज्ञान का प्रयोग किस प्रकार किया जा सकता है। यह हमारे विद्वानों और वैज्ञानिकों को पूरे समय स्मरण करना होगा कि जीवन का यही पक्ष, जिसे हम भौतिक पक्ष कहते हैं, सब कुछ नहीं है। मैं चाहता हूं कि हमारे शिक्षा–केन्द्रों में एक वास्तविक धर्म का वातावरण व्याप्त रहे–गुरु के लिए, सत्य के लिए, उस यथार्थ के लिए जो हमें परिव्याप्त किये हुए है, जो हमारे अन्दर है और हमारी पहुंच से बाहर भी है, उस सबके लिए श्रद्धापूर्वक सम्मान हो। वैज्ञानिक विश्व को गणित के कुछ फार्मूलों में सीमित कर लेता है, जिनसे कि सिर्फ अधिक से अधिक कुछ अनुभवों को प्रकट करता है। एक अनुभव, एक मनोवृत्ति अथवा चेतना में एक स्फुरणमात्र है। मैं यह मानता हूं कि जनजीवन में अधिक निर्मलता की गुंजाइश है, अधिक उत्सर्ग–भावना की आवश्यकता है। इस प्रेरणा के लिए अपने विद्वानों, वैज्ञानिकों और विश्वविद्यालयों को छोड़कर हम और किसकी ओर देखें? एक नैतिक और आध्यात्मिक आन्दोलन शिक्षकों के बीच स्वरूप धारण करे, जिससे राष्ट्र को नवजीवन प्राप्त हों।

शिक्षक :–

डा. सम्पूर्णानन्द जी विचार व्यक्त करते थे कि जो व्यक्ति सच्चे अर्थों में अध्यापक बनना चाहता है उसे अनेक दार्शनिक प्रश्नों के उत्तर देना चाहिए अन्यथा वह मशीन चलानेवाले फोरमैन की तरह रह जायेगा। आज समाज को भी सोचना चाहिए कि वह अपने अध्यापकों से कैसा काम लेना चाहता है? उनसे क्या तैयार कराना चाहता है? जीवनरूपी रणभूमि के लिए पहलवान, मूक, बधिर, सिपाही या सच्चा मनुष्य? डा. सम्पूर्णानन्द जी शिक्षाके वास्तविक स्वरूप पर सबका ध्यान आकृष्ट करना चाहते हैं और उपनिषद् और गीता में शिक्षा पर जो श्लोक कहे गये हैं उसका भरपूर समर्थन भी करते हैं। आज हमको एक–दूसरे से बैर नहीं है, पर अपने स्वार्थ की आंख लगी है। सबकी यही दषा है। यदि यह बात समझ में आ जाय कि आपस का द्वन्द्व बन्द हो जायेगा। सबको सुख–समृद्धि प्राप्त होगी, कम से कम हमको एक–दूसरे के दुःख को बढ़ाने का कारण नहीं बनना चाहिए।

अनुशासन :–

डा. सम्पूर्णानन्द का सुझाव है कि छात्रों की अनुशासनहीनता रोकने के लिए तथा सार्वजनिक सम्पत्ति को विनाष व तोड़–फोड़ के विरुद्ध एक विषेश कानून बनना चाहिए। सभी विश्वविद्यालयों और शिक्षण संस्थानों में प्राक्टर मजिस्ट्रेट नियुक्त करने की पद्धति पुनः लागू करना चाहिए। (पहले कुछ स्थानों में इस तरह के अधिकारी होते थे।) प्राक्टर मजिस्ट्रेट की नियुक्ति से कुछ वे जटिल समस्याएं भी हल हो जायेंगी जो पुलिस द्वारा विश्वविद्यालय क्षेत्र में प्रवेष के बाद उत्पन्न हो जाती हैं।

विद्यार्थी :–

शिक्षा के क्षेत्र में विद्यार्थी के लिए विषय का चुनाव बड़ा महत्वपूर्ण है। इस कार्य के लिए ऐसे कुषल व्यक्तियों की आवश्कता है जो विद्यार्थी की मनोवैज्ञानिक जांच करके उसके रुझान का पता लगायें और उसे परामर्ष दें कि वह कौन–सा विषय ले। इससे कभी इंजीनियर और कभी डाक्टर बनने की अंधी दौड़ पर रोक लगायी जा सकती है। प्रौढ़ शिक्षा का पाठ्यक्रम इस ढंग से बनाया जाय कि जिससे प्रौढ़ व्यक्ति को विश्वास हो कि इस पढ़ाई से उसे अपने कार्य में सहायता मिलेगी, वह किताबी ज्ञान की ओर आकर्षित न होगा। पढ़े–लिखे व्यक्ति के आचार–व्यवहार में एक शालीनता होनी चाहिए। डा. सम्पूर्णानन्द जी कहते हैं कि जो व्यक्ति भारतीय संस्कृति के मूलभूत सिद्धांतों से अपरिचित है, जिसको उस संस्कृति के प्रति अस्वारस्य है, वह जब उस संस्कृति के विषय में दूसरों को उपदेष देता है तो हंसी भी आती है और रोना भी आता है। जो उपदेष अनाधिकारियों के मुंह से भारतीय नवयुवकों को सुनने को मिलते हैं वह उसके मस्तिष्क को भ्रष्ट करते हैं। एक ओर तो वह अपने उपदेष्टाओं, नेताओं, बुजुर्गों के आचरण से यह देखता है कि पुरानी बातों का शीघ्र से शीघ्र परित्याग करना चाहिए।

धार्मिक शिक्षा :–

डॉ0 सम्पूर्णानन्द जी जब धर्म शब्द का व्यवहार करते हैं तो उसका मजहब के अर्थ में नहीं करते वरन् उस अर्थ में जिसमें इसका व्यवहार वैदिक, जैन और बौद्ध आचार्यों ने किया है। मनु के उस सुप्रसिद्ध श्लोक पर बल देते थे जिसमें उन्होंने 'अहिंसा सत्यमस्तेयं शौचेन्द्रियनिग्रहः' आदि कहकर धर्म का लक्षण बताया है। अहिंसा आदि सद्गुणों का समुच्चय ही धर्म है। इस अर्थ को ध्यान में रखने पर स्पष्ट हो जाती है कि धार्मिक शिक्षा अनिवार्य रूप से देनी चाहिए। धार्मिक षिक्षक को, चाहे वह किसी देष या समाज का अंग हो अपने देश की परम्पराओं और वीरगाथाओं से उसे उस विषय में बड़ी सहायता मिलती है। उसे अपने शिष्यों तथा समाज के बीच इसका प्रचार तथा प्रसार करना चाहिए। भारत

तो इस विषय में बहुत भाग्यशाली है। 'सच बोलो, सच बोलो' सौ बार कहने से भी जितना प्रभाव नहीं पड़ता उतना एक हरिश्चन्द्र की कथा से पड़ता है। आत्म–त्याग के लिए षिवि, दधिची, रन्तिदेव, जीमूतवाहन की कथाओं से बढ़कर ज्वलंत उदाहरण और कहां मिल सकता है। देष भक्ति के लिए प्रताप की कथा तथा स्त्रियोचित आचरणों के लिए सती–सावित्री, सीता और लक्ष्मीबाई के नाम किसी भी देश की स्त्रियों के लिए पथ–प्रदर्शन कर सकते हैं। कभी–कभी यह आपत्ति उठायी जाती है कि हमारी पुरानी गाथाओं में ऐसी बातों का चर्चा होता है, जिनका मजहब से सम्बन्ध है, देव–देवियों की चर्चा आ जाती है। यह बात सही है लेकिन प्राचीन काल की गाथाओं से ऐसी बातों को निकाला नहीं जा सकता।

निष्कर्ष :

आज हमारे दशवासियों के समक्ष आदर्शों का अभाव है। आज हमारे नेता इस दृष्टि से पूर्णतया असफल रहे हैं। हम भौतिक स्तर से ऊपर नहीं उठ पाये हैं। हम रोटी, कपड़ा, मकान एवं सड़कों के अतिरिक्त अन्य किसी आदर्ष को प्रस्तुत न कर पाये। मनुष्य के सर्वश्रेष्ठ गुण को उभारने में हम असफल रहे हैं। विदेशी दासता से अब तक हम भौतिक साधनों की रट लगा रहे हैं। ऐसी स्थिति में बुद्धिजीवियों को नेतृत्व करना चाहिए। लेखक, कवि, शिक्षक उस भविष्य की चर्चा करें जो हमसे दूर हैं, क्योंकि हम उसे लाने का प्रयास नहीं करते। उन्हें नवयुवक के मस्तिष्क में वे भाव भरने चाहिए कि वे पृथ्वी पर स्वर्ग उतार सकें और ईष्वर के सच्चे पुत्र बन सकें। राष्ट्रीय विकास, निसन्देह एक बहुमूल्य और वांछनीय लक्ष्य है और भावी नागरिक को इस प्रकार सुसज्जित करना होगा, जिससे वह उन सब योजनाओं में समुचित और सक्रिय भाग ले सके।

डा. सम्पूर्णानन्द जी का मानना है कि हम अपनी शिक्षाको केवल पुस्तकों की पढ़ाई तक ही सीमित न रखकर उसे ऐसा रूप दें जो विद्यार्थियों को समाज से जोड़े और उसे इस प्रकार का प्रषिक्षण दें जिससे वह केवल नगर में रहकर सफेदपोश बाबू न बना रहे। वह शारीरिक श्रम से न घबराये और अपने हाथों से भट्टी का कार्य करने में गौरान्वित अनुभव करे। समाज सेवा को हम पाठ्यक्रम में महत्वपूर्ण स्थान दें और विद्यार्थियों को ऐसा प्रशिक्षण दें जिससे वे नगरों और ग्रामों में बसे हुए अपने भारतवासी भाइयों के प्रति अपने कर्तव्य को पहचाने। जहां कहीं आवश्यकता हो वे सफाई अभियान चलायें। ग्रामीण क्षेत्र में जब भी किसान पर कार्यभार अधिक हो वे फसल की निराई या कटाई में उनका हाथ बटायें। वे सैनिक शिक्षाको भी पाठ्यक्रम में शामिल किया जाना आवष्यक समझते थे। यह सर्वविदित है कि देश की रक्षा के लिए बड़ी से बड़ी सेना पर्याप्त नहीं होती। सेना के पीछे दूसरी पंक्ति की अत्यन्त आवश्यकता होती है। आपातकाल में जब सेना युद्ध में व्यस्त होती है, देष की अन्दर की सुरक्षा और शांति बनाये रखने के लिए सैनिक शिक्षा पाये हुए नवयुवक और युवतियां ही वास्तव में उपयोगी सिद्ध होंगे।

सन्दर्भ :–

1. डॉ. सम्पूर्णानन्द, समाजवाद, प्रषासन और हम, प्रकाषक–नेषनल पब्लिकेषन हाऊस, नयी दिल्ली, पृष्ठ–123.
2. गंगा प्रसाद मिश्र, (पत्रिका), उ. प्र. जन–1989 प्रकाषक–सूचना एवं जनसम्पर्क विभाग, उत्तर प्रदेष, लखनऊ, पृष्ठ–68–69.
3. डॉ. सम्पूर्णानन्द जी के जोधपुर विष्वविद्यालय के प्रथम समावर्तन समारोह में दीक्षान्त भाषण का अंष, डॉ.सम्पूर्णानन्द का जीवन एवं चिन्तन, प्रकाषक–सम्पूर्णानन्द संस्कृत विष्वविद्यालय, वाराणसी, पृष्ठ–112
4. डॉ. सम्पूर्णानन्द, कुछ स्मृतियां और कुछ स्फुट विचार, प्रकाषक–ज्ञानमण्डल लिमिटेड, वाराणसी, पृष्ठ–252.
5. सिंहल, महेश चन्द्र भारतीय शिक्षा की वर्तमान समस्याँयें, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ, अकादमी, जयपुर 1971,पृष्ठ–96.